राष्ट्र संघ: आदर्शवाद, संरचनात्मक सीमाएँ और विफलता (1919–1939)
The League of Nations: Idealism, Structural Limitations and Failure (1919–1939)

राष्ट्र संघ की स्थापना प्रथम विश्व युद्ध के बाद अंतरराष्ट्रीय शांति बनाए रखने के उद्देश्य से की गई थी। इसका मूल आधार सामूहिक सुरक्षा और अंतरराष्ट्रीय सहयोग था। यह आधुनिक अंतरराष्ट्रीय संगठनों का अग्रदूत माना जाता है।

राष्ट्र संघ की संरचना में महासभा, परिषद और स्थायी सचिवालय शामिल थे। सिद्धांततः सभी सदस्य राष्ट्र समान थे, किंतु वास्तविक शक्ति प्रमुख यूरोपीय राष्ट्रों के हाथ में केंद्रित रही। अमेरिका, जिसने इसकी परिकल्पना की थी, स्वयं इसका सदस्य नहीं बना। यह इसकी प्रारंभिक कमजोरी थी।

राष्ट्र संघ की सबसे बड़ी समस्या यह थी कि इसके पास सैन्य शक्ति नहीं थी। किसी भी निर्णय को लागू करने के लिए सदस्य राष्ट्रों की सहमति आवश्यक थी। सर्वसम्मति की शर्त ने निर्णय प्रक्रिया को धीमा और अप्रभावी बना दिया।

1930 के दशक में इसकी सीमाएँ स्पष्ट हो गईं। जापान द्वारा मंचूरिया पर आक्रमण (1931), इटली द्वारा इथियोपिया पर आक्रमण (1935) और जर्मनी द्वारा राइनलैंड का पुनर्सैन्यीकरण (1936) जैसी घटनाओं में राष्ट्र संघ प्रभावी हस्तक्षेप करने में असफल रहा। ब्रिटेन और फ्रांस की तुष्टीकरण नीति ने इसकी विश्वसनीयता को और कमजोर किया।

इतिहासलेखन में पारंपरिक दृष्टिकोण राष्ट्र संघ को एक आदर्शवादी परंतु अव्यावहारिक संस्था मानता है। संशोधनवादी इतिहासकारों का तर्क है कि इसकी विफलता संस्था की नहीं, बल्कि सदस्य राष्ट्रों की राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी के कारण हुई।

निष्कर्षतः राष्ट्र संघ अंतरराष्ट्रीय सहयोग की दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रयोग था, किंतु शक्ति राजनीति और राष्ट्रीय हितों के सामने इसकी आदर्शवादी संरचना टिक नहीं सकी। इसकी विफलता ने द्वितीय विश्व युद्ध की पृष्ठभूमि तैयार की और बाद में संयुक्त राष्ट्र की स्थापना के लिए मार्ग प्रशस्त किया।